International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 30-07-2025, Accepted: 29-08-2025, Published: 16-09-2025
Volume 11, Issue 3, 2025, Page No. 81-83

मध्यकाल की दो भीतरी ताकत : कबीर एवं तुलसी

प्रो. सुकर्मवती देवी
हिंदी विभाग, इंस्टीट्यूट ऑफ़ इंटीग्रेटिड एंड ऑनर्स स्टडीज, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा, भारत

सारांश
आध्यात्मिक धरातल पर रचित मध्ययुगीन काव्य भारतीय संस्कृति का पुष्टपोषक एवं संवाहक है। यह साहित्य मानव मूल्यों की उच्च पृष्ठभूमि तैयार कर जन – जीवन को जीने की नई प्रेरणा प्रदान करता है। नई चेतना को ऊर्जस्वित कर आडंबरवाद का खंडन करता है। घोर सामंतवाद की मानसिकता में उपजा ये साहित्य मानव जाति को संकीर्ण घेरे से निकालकर प्रगतिशील विचारों से समन्वित करना चाहता है। कबीर और तुलसी दोनों ही इस युग की उपज थे, उन्होंने अपनी – अपनी विचारधारा से समाज को मुक्ति दिलाने का महान कार्य किया। सांप्रदायिक दृष्टि से धर्म के विभेद को दूर कर मनुष्य – मनुष्य के बीच की दूरी को खत्म करने का बीड़ा उठाया। तुलसी की दृष्टि लोकमंगल की है, वे अपनी रचनाओं में उच्चतम भावभूमि और जीवन के सैद्धांतिक उच्चादर्शों की प्रतिष्ठा करते हैं । दूसरी और कबीर भी संयमित तरीके से समाज को अनाचारों की दलदल से निकालकर प्रवंचना रहित आत्मानुभूति का बोध कराना चाहते थे। समाज हित में दोनों का योगदान आज भी प्रासंगिक है।

मूल शब्दः वर्ण व्यवस्था, सांप्रदायिकता, अंधविश्वास, नैतिकता, मानवता, अलौकिक पुनर्जागरण, सामाजिक बदलाव

कबीर और तुलसी मध्यकाल के दो ऑख और दो कान हैं, जो सब कुछ आत्मसात करते हुए हाथ और पैर के समान सदैव गतिशील रहे हैं। उनकी वाणी और संदेश जीवन के संघर्ष में आनंद और तरलता का पैगाम देते हैं। मानव जीवन की सांसारिक यात्रा को सुखमय बनाने का मूल मंत्र उनकी रचनाओं के गर्भ में छिपा है। जिन यातनाओं को इन दो महान शक्तियों ने जन्मजात स्वीकार किया, अंधविश्वास की उस दर्दनाक दलदल से अपने आप को बाहर घसीटने का सार्थक प्रयास किया। रुग्ण समाज की पीड़ाओं से कराहते हुए ऐसा पलटा लिया जिसने समस्त समाज के स्वस्थ होने की परिकल्पना कर डाली। उनकी रचना का एक–एक शब्द मानव मात्र का पथ प्रदर्शक बन अपना परचम लहराता हुआ दिखाई देता है। बुराई को पीछे धकेलते हुए अच्छाई की उँगली पकड़ हम उनके संग – संग मृग शावक की भाँति कुलाची भरने लगते हैं। यही तो भीतरी ताकत है, दृढ़ इच्छा शक्ति है जो सबको अपनी सी लगने लगती है तथा कवि कर्म को सार्थक बना देती है।

मध्य युग के समाज पर दृष्टिपात करें तो हम पाएंगे कि पहले जो वर्ण व्यवस्था अपना पैर जमाए हुए थी, उसमें एक तरफ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि जातियों की वर्ण व्यवस्था को बनाए रखने के लिए उनके गुण और कर्म निर्धारित किए जा रहे थे, तो दूसरी तरफ संतों द्वारा पुरानी वर्ण व्यवस्था को अस्वीकार करने का प्रयत्न भी तेज गति से चल रहा था। वर्तमान में जाति व्यवस्था ने चारों तरफ जहर गोल रखा है। हमारे राजनेता जनता को इस खाई से बाहर नहीं निकलने देना चाहते। नफरत की आग को भड़काने में मीडिया आग में घी का काम कर रहा है। पैसे में जब सब चीज बिकने लगती हैं तो विश्वास का मोल लगाने वाला भीड़ में कुचला जाता है। परंतु मध्यकाल के कवियों को कुचलने की ताकत किसी में नहीं हुई। वर्ण व्यवस्था पर जवाबी चोट करते हुए कबीर ललकार उठाते हैं–

"जो तू बाम्हन बाम्हनी जाया।
आन बाट ह्वै काहे ना आया।"[1]

तुलसी के राम भी कबीर के इस समता राज्य को स्थापित करने में कटिबद्ध है। राम को आधार बनाकर ही तुलसी समानता की दीवार पर प्रेम का दीपक सजाना चाहते थे। उनका रामचरितमानस लोक मानस की मर्यादा को स्थापित करने के लिए लिखा गया। तुलसी की व्यवहारवादिता ही उन्हें सबसे अलग खड़ा करती है। सभी तरह के बंधनों से ऊपर उठकर वे केवल और केवल राम की शरण में जाते हैं। उन्हें चहुँ ओर राम का ही प्रकाश दिखाई देता है, उस प्रकाश के सामने सब कुछ फीका लगता है। यद्यपि तुलसी वर्णव्यवस्था के हिमायती दिखाई देते हैं, परंतु इसकी स्वीकृति कठोर अनुशासन में ही है। इसके पीछे उनके चिंतनशीलता विद्यमान थी, जहाँ – कहीं उन्हें आक्रामक स्थिति लगी, तत्काल उसका प्रतिरोध किया–

"जाति – पाँति धनु – धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई।।× × × ×
सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना।"[2].

उनकी वर्ण व्यवस्था सामाजिक भेदभाव के लिए नहीं है अपितु सामाजिक नियमन और सुविधा के लिए है। लंका से वापस लौटने पर राम चारों वर्णों के लिए अलग–अलग घाट बनवाते हैं परंतु प्रत्येक वर्ण के लोग उन पर स्नान करते हैं, जो जातिवाद का पर्याय नहीं माना जा सकता। समाज में छुआछूत की भावना चरम पर होने के बावजूद तुलसी ने निकृष्ट जाति के लोगों को गले लगाया और उनका उद्धार भी किया। यही उनका रामत्व है। तुलसी की राम कथा में केवट, निषाद, सबरी, कोल – किरात, अहिल्या, वानर व भालू आदि के प्रति दया का भाव है।

उनके काव्य में नैतिकता के मानदंडों का मूल्यांकन भी सार्थकता से किया गया है। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, अभिमान, पाखंड, झूठ, छल, कपट, राग व द्वेष आदि अनैतिक भावों को आचरणहीनता की संज्ञा दी गई। उनके अनुसार माता–पिता, गुरु, मित्र व संत आदि की निंदा के कारण पाप पननता है तथा अंत में मनुष्य पाप का भागीदार बनता है। अपने आचरण और कार्य से अगर व्यक्ति, समाज, देश, धर्म और भक्ति की हानि हो तो वे सब त्यागने में ही भलाई है । उनके हृदय में समस्त मानवता के लिए समता का भाव जागृत हो चुका था। वे सबके हितकारी हैं, उनके राम सबके राम हैं। तुलसी की समता दृष्टि की राज्य कल्पना मानस में साकार हो उठी है–

"राम राज बैठे त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका।।
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।"[3].

तुलसी ने जिस रामराज्य की कल्पना की है, उसमें सुख का आधार आध्यात्मिक भावना है, न कि भौतिक समृद्धि। नैतिक सदाचरण, संतोष, शील, विवेक क्षमता व धैर्य आदि सदगुण मनुष्य के संयमित जीवन और व्यवहार की अपेक्षाएं हैं। मानस की केंद्रीय धुरी राम बल, पौरुष एवं शील की शक्ति हैं। वे विवेक को महत्व देते हैं। विवेक के बिना ज्ञान अंधा हो जाता है, शक्ति अहंकार से लिपटकर चूर–चूर हो जाती है। रावण, कुंभकरण और मेघनाथ की विवेक शून्यता ही उनके विनाश का कारण बनती है। जब यह धुँधला पड़ने लगता है तब शोभा और सुंदरता पर ग्रहण लग जाता है। ऐसे समय पर कबीर की वाणी गंभीर हो जाती है–

"बना बनाया मानवा, बिना बुद्धि बेतूल।
कहा लाल ले कीजिए, बिन वास का फूल।।"[4]

उक्त पंक्तियाँ कवि की नैतिक बनावट की समझ हैं। मन की सुंदरता के बिना तन की सुंदरता व्यर्थ है। तुलसी भी इस बात को भली – भाँति जानते थे, इसलिए उनकी बुद्धि भी न धन में रमती है और न ही मोक्ष में। वे पाप – पुण्य की सरिता से ऊपर जन्म – जन्मांतर तक इनसे मुख मोड़ते दिखाई देते हैं। हृदय के घर में बैठकर ग्रंथियां को सुलझाने वाली बुद्धि मानसिक शत्रुओं को पनपने नहीं देती, जबकि कुबुद्धि अहंभाव की पुष्टि कर सर्वनाश की और ले जाती है। भक्त कवि की ईश्वर प्राप्ति की कामना अकेली नहीं होती बल्कि वह संपूर्ण समाज को साथ लेकर चलने वाली होती है। संसार के मोह माया को त्याग वह अपना सारा ध्यान परमपद को प्राप्त करने में लगा देता है। इन कवियों ने लोक कल्याण के लिए उपदेश से ज्यादा अपने आचरण से लोगों को प्रेरणा दी है। तुलसी का संभावित यथार्थ भी यही है–

"अर्थ न धर्म न काम रुचि गति न चहौं निर्वान।
जन्म–जन्म सिया राम पद यह वरदान नआन।।"[5].

उन्होंने सिद्ध कर दिया की सच्ची भक्ति सच्चे मन से ही प्राप्त होती है, उसके लिए विशेष धर्म की जरूरत नहीं है। मानवता की सेवा से बड़ा कोई धर्म नहीं, उनके ये विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं, जितने अपने समय में प्रभावशाली थे। युगपुरुष वही होता है जो अपने समाज में फैली हुई रूढ़ियों की जंजीरों को तोड़कर मानवता का सच्चा रास्ता दिखा सके। किसी विशेष धर्म के वे पक्षपाती नहीं थे, जिस धर्म में उन्हें जो भी अनुचित लगा, उसका विरोध किया। हिंदू और मुसलमान दोनों ही अपने–अपने धर्म को एक दूसरे से श्रेष्ठ दिखाने का प्रयास कर रहे थे पर उनमें अनेक खामियां थीं, जिनको वे निरंतर नजर अंदाज करते जा रहे थे। कबीर ठहरे समाज दर्शी, वे दो टूक शब्दों में रुग्ण धर्म को तार – तार कर देते हैं –

"अरे इन दोऊन राह न पाई।
हिंदू अपनी करै बड़ाई, गागर छुवन न देई। वेस्या के पायन तर सोवै, यह देखो हिन्दुआई।।"[6].

कबीर जी दो तरफी बातों में विश्वास नहीं करते थे। उन्होंने तो अपने जीवन को दाँव पर लगाकर समाज सुधार का बीड़ा उठाया था। वे मानवता के सच्चे सिपाही थे। वे लोगों की ऑखों में धूल झोंकने वालों के अन्तर्चक्षु खोलना चाहते थे। उन्होंने दोनों धर्मों की पूजा – पद्धतियों की आलोचना करते हुए धार्मिक बहुलवाद का समर्थन किया। उनका सांसारिक अनुभव गहरा और खरा था। जिस समाज में सामाजिक तथा धार्मिक मान्यताओं, मानवता विरोधी रूढ़ियों, आचार – विचार, रीति – रिवाज की कट्टरता विद्यमान हो, ऐसी स्थिति में कबीर अपनी कविता से अपना स्वर बुलंद करते हैं –

हिंदू पूजै देहुरा मुसलमान मसीत,
नामा सोई सेविया जहाँ देहरा न मसीत।"[7]

समाज में अधर्म को फैलाने के लिए जितने भी हथकंडे हो सकते थे, उतने ही इन दोनों धर्मों के लोगों ने अपनाए। 'कवितावली' के उत्तरकांड का कलिकाल पूरी सामाजिक व्यवस्था का कलियुग है, जिसमें तमोगुण का प्रभाव, दांपत्य संबंधों में बिखराव, मानवीय रिश्तों में स्वार्थपरता, प्रकृति का भयंकर प्रकोप, दरिद्रता, दुख, वेद विहीन मार्ग, सामाजिक – आर्थिक बेरोजगारी, गुरु और शिष्य के अंधे – बहरे संबंध, पारिवारिक संबंधों की मर्यादाहीनता का जीवंत चित्रण प्रस्तुत किया गया है। प्रकृति व शासन के प्रकोप से जनता रसातल को जा चुकी थी। लोगों की मानसिकता जर्जर होती जा रही थी। उनका अंधविश्वास कम होने की बजाय बढ़ता ही जा रहा था। सच्चाई उनकी ऑखों से कोसों दूर थी। धर्म के ठेकेदारों ने सामान्य जन के चक्षुओं पर धर्म – लोभ का चश्मा चढ़ाया हुआ था, जिसके परे उन्हें कुछ सुझता ही नहीं था। ऐसे समय में उनका दिशानिर्देश कौन करता ? इस धर्म – लोभ से परे एक बुद्धिवर्ग विकसित हो रहा था, जो अपनी नंगी ऑखों से सब कुछ नजदीक से अनुभव कर पा रहा था –

"किस हूँ पूँजूँ दूजा नजर ना आई।
एक पाथर कीज्जे भाव, दूजे पाथर धरिए पाव।।"[8]

इस प्रकार की स्थिति चिंतक मन को उलझन में डाल देती है। तुलसी ने जगत को जो राम दिया है, वह देहधारी ब्रह्म हैं। उनका ब्रह्म अवतारी राम बनकर न्याय, धर्म और व्यवस्था का राज्य स्थापित करता है। अलौकिक शक्ति के पर्याय राम, साधारण मनुष्य की भाँति गुरु – वंदन, माता–पिता की आज्ञा का पालन, पत्नी वियोग में विलाप करते हैं, अनुज के प्रति स्नेह व आत्मीयता का धर्म निभाते हैं। राम 'मंगल भवन अमंगल हारी' कहे गए हैं। सांसारिक पीड़ाओं – बाधाओं, चीख – चीत्कारों से निजात पाने के लिए राम रूपी विश्वास उदित हुआ, पृथ्वी पर उनका अवतरण प्रयोजन सिद्ध है –

"दुष्ट उदय जग आरति हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू।।
संत उदय संतत सुखकारी। विस्व सुखद जिमि इंदु तमारी।।"[9]

संत सदैव समाज हित की बात करते हैं। 'ना काहू से दोस्ती ना काहू से वैर' की नीति पर चलने वाले फक्कडाना स्वभाव के ये संत आकर्षणों से दूर रहकर सादा जीवन व्यतीत करने में विश्वास रखते हैं। मकड़जाल से रहित जहाँ उस ईश्वर के दर्शन पाते हैं, उसी से धन्य हो जाते हैं। उनका मानना है कि जहाँ उस ईश्वर का नाम नहीं है, वह स्थान बेगाना है –

"ना घर भलो न बन भला, जहां नहीं निज नाँव।
दादू उनमनि मन रहै, भला न सोई ठाँव।।"[10]

देखा जाए तो तुलसी और कबीर के राम अलग–अलग हैं। तुलसी के राम दशरथ पुत्र मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, तो कबीर के राम निर्गुण रूप में सर्वव्यापी हैं। उनकी दृष्टि में ईश्वर एक ही है। रूप अनेक हो सकते हैं पर स्वरूप एक ही है। ईश्वर के नाना रूपों में भटकता हुआ समाज घोर अंधकार में खो जाता है। कबीर जैसे संत कवि बड़ी सरलता से उजाले की सुनहरी किरणों के समान, उसकी सुंदर व्यवस्था निर्मित करते हैं –

"वही महादेव, वही मुहम्मद, ब्रह्मा आदम कहिये ।
को हिन्दू को तुरुक कहावै, एक जिमी पर रहिये।।"[11]

तभी तो कबीर ज्ञान का दिया पकड़ाने वाले उस गुरु को विशेष महत्व देते हैं जो सच्चे ईश्वर से साक्षात्कार कराता है। उनकी

अंतर्व्यथा को दूर करने वाला वह गुरु ही है जो समस्त सुख की खान है। ज्ञान से लेकर ईश्वर भक्ति प्राप्त करने के मार्ग तक गुरु माध्यम बनाकर चरम लक्ष्य तक साधक को प्रेरित करता है–

"हिंदू की हदि छाँड़ी कै, तजि तुरक की राह। सुंदर सहजै चीन्हियाँ, एकै राम अलाह।।"[12]

उन्होंने अपने समय की दो सामाजिक – सांस्कृतिक ताकतों को एक दूसरे से लोहा लेते हुए दो विरोधी शक्तियों का टकराव उद्घाटित किया है। समाज की ऊहापोह से दूर ये दोनों कवि भक्ति के एक नए रास्ते को अपनाते हैं, जो घनानंद की प्रेमानुभूति के समान सच्चा, सरल और सपाट है। तत्कालीन युग में ईश्वर को प्राप्त करने के लिए विभिन्न बाह्यचारों की प्रधानता थी, जबकि ये सब तो भक्ति के अजातशत्रु हैं। इन कवियों के अनुसार भक्ति के लिए तो श्रद्धा और विश्वास का जागरण जरूरी है । माया इसको पनपने नहीं देती और बुद्धि उसका चिंतन नहीं कर पाती। भक्ति का न तो कोई गुण है, न रंग है और न ही गंध है, अपितु यह तो निश्छल प्रेम पर आधारित समर्पण भावना है। तुलसी ने भक्ति को एकांतिक साधना के क्षेत्र से निकालकर सामाजिक साधना के साथ जोड़ दिया। वे तो स्वतंत्र भक्ति को समस्त सुखों की खान, संजीवनी बूटी और मानसिक रोगों का विनाश करने वाली साधना मानते हैं। ज्ञान, कर्म और भक्ति में भक्ति को सर्वश्रेष्ठ इसलिए माना गया है क्योंकि ज्ञान और कर्म दोनों ही भक्ति के अधीन हैं। तुलसी के अनुसार नीचे दिए गए भक्ति के जितने भी धर्म बताए गए हैं, इन सब का एकमात्र फल है – भगवान के चरणों में अर्पित प्रेम। उनका स्वर करुणा से भीगा हुआ है –

"जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना शुभ कर्मा।।
ज्ञान दया धरम तीर्थ सज्जन। जहँ लगी धर्म कहत श्रुति सज्जन।।
आगम निगम पुरान अनेका।। पढ़ें सुने कर फल प्रभु एका।।
तब पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुंदर।।"[13]

उनकी यह भक्ति साधना सबके लिए है, किसी जाति विशेष के लिए नहीं। वे लोगों को अभिमान और छल कपट रहित भक्ति की तरफ उन्मुख करते हैं। कबीर और तुलसी दोनों ही भारतीय संस्कृति एवं धार्मिकता के अग्रणी नायक हैं, जो जनता के पुनर्जागरण का बीड़ा उठाते हैं। उन्होंने धर्म की विशाल कल्पना की है। वह दृश्य और अदृश्य दोनों में शील और माधुरी रूप में समाहित है। समाज की विभिन्न पद्धतियों की शिथिलता के कारण तथा धर्म लोलुप व्यक्तियों के हावी होने पर अनिश्चितता के बादल मंडराने लगते हैं। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं– "हिंदू धर्म की कट्टरता, उपेक्षा तथा तत्जनित भावना की निराशा व ब्राह्मण और शुद्र के झगड़े ने हिंदुओं को मुस्लिम होने को बाध्य किय।"[14] तत्जनित निराशा ने इन कवियों को गहरे तक प्रभावित किया। परिणामस्वरूप उन्होंने लोक चेतना के मार्ग को अपनाया, जिस पर सभी सुरक्षित चल सकें।

इस प्रकार कह सकते हैं कि उनकी वाणी युगातीत है। मानवीय मांगलिकता के पोषक ये दोनों कवि समाज से अपने लिए कुछ माँगते नहीं, अपितु दोनों हाथों से बाँटना जानते हैं, जो लेना चाहे मन मुताबिक ले सकता है। दोनों ही कवि सत्ता के भय से अभय होकर तदयुगीन समाज – सत्य को व्यक्त कर रहे थे। उनकी रचनाएँ जीवन का अमर संदेश सुनाती हैं, उनकी वाणी का अनुकरण संभव है। 'कबीरा खड़ा बाजार में मांगे सबकी खैर, ना किसी से दोस्ती ना किसी से बैर' – पंक्तियाँ, समस्त मानवता के कल्याण का प्रसाद बाँटती हैं। तुलसी ने राम कथा को माध्यम बनाकर झूठे दिखावे को दूर कर एक आदर्श समाज की स्थापना की है, जिसका दिग्दर्शन इनकी रचनाओं में निहित है। उनके विचार हमें सामाजिक बदलाव के लिए उत्प्रेरित करते हैं, एक ऐसा समाज खड़ा करने के लिए, जहाँ हर व्यक्ति अन्याय और भेदभाव से परे हो, जिसमें सबको समान अधिकार और अवसर प्राप्त हों।

संदर्भ सूची

1. कबीर ग्रंथावली, सं. डॉ. माता प्रसाद गुप्त, पृ. 41
2. श्री रामचरितमानस (गुटका), अयोध्या० 131 /5,6,7/ तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, 52 वां संस्करण
3. रामचरितमानस, उत्तर०, 20–30
4. हंसदास शास्त्री,महावीर प्रसाद,बीजक–कबीर, कबीर प्रकाशन समिति, हरक, साखी– 324
5. 5.रामचरितमानस, उत्तरकांड, श्री रामचरितमानस (गुटका) तुलसीदास, गीता प्रेस, गोरखपुर
6. अयोध्या सिंह उपाध्याय, कबीर वचनावली, पृ. 242
7. श्री वियोगी हरि, संत सुधासार, पृ. 55
8. श्री वियोगी हरि, संत सुधासार, पृ. 4
9. रामचरितमानस, उत्तर०,121(क), 20–21
10. दादू दयाल की बानी, (भाग 2) वेलडियर प्रेस, प्रयाग, सं. 1928
11. डॉ. रामरतन भटनागर, कबीर, पृ. 131
12. सं. वियोगी हरि, सन्त सुधासार, खण्ड–1, पृ. 530
13. रामचरितमानस उत्तरकां० 49
14. 14.डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ. 13–14